सोशल मीडिया के सामाजिक सरोकार
(Social concern of social media)

सम्पादक : डॉ0 सतीश चन्द्र जैसल एवं डॉ0 साधना श्रीवास्तव

ISBN : 978-93-87492-00-4

प्रथम संस्करण : 2017

Price : 450/-

Copyright © U P Rajarshi Tandon Open University, Allahabad

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced. Stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior written permission of the Publisher.

Disclaimer: The ideas and views given as an articles and papers in present edited book, are of their authors own. Editors and the Publisher are not responsible for any of their statements.

Published by :
Reflections Printers & Publishers
Aligarh-202002

Scanned with CamScanner

अनुक्रमणिका

	प्राक्कथन	I
	आमुख	III
	प्रस्तावना	V
1.	हम भारत के लोग एवं सोशल मीडिया *प्रो0 अनिल उपाध्याय*	1
2.	आज के समाज में सोशल मीडियाः वरदान या अभिशाप *डॉ. मुकुल श्रीवास्तव, सैयद काज़िम असग़र रिज़्वी*	7
3.	विकास के उपकरण के रूप में सोशल मीडिया के शैक्षिक और सामाजिक सरोकार *डॉ. रुचि बाजपेई*	18
4.	प्रजातंत्र में सोशल मीडिया का दायित्व *डॉ0 कंचन*	25
5.	नेताओं पर बने स्पूफ और उसके सामाजिक प्रभाव का एक अध्ययन (उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के विशेश संदर्भ में) *हरिनाथ कुमार, प्रो. गोविंद जी पांडेय*	30
6.	राष्ट्र के विकास में सोशल मीडिया की भूमिका *डॉ. गुरु सरन लाल, डॉ. गोपा बागची*	37
7.	जुर्म की दुनिया मे स्मार्टफोन *सूर्य प्रकाश*	43
8.	पत्रकारिता क्षेत्र में सोशल मीडिया की भूमिका *डॉ. लोकनाथ*	54
9.	भारत के विकास में सोशल मीडिया का योगदान *डॉ0 साधना श्रीवास्तव*	70

Scanned with CamScanner

22.	"सोशल मीडिया से समाज सेवा : मिनीमम गवर्नमेंट, मैक्सिमम गवर्नेंस का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण" *दीपक राय*	179
23.	ग्रामीण विकास में सोशल मीडिया की भूमिका *राघवेंन्द्र दीक्षित*	191
24.	सोशल मीडिया एंव सामाजिक दायित्व *शुभम सिंह*	201
25.	जनमत निर्माण में मीडिया की भूमिका का आलोचनात्मक विश्लेषण:– सोशल मीडिया के विशेश संदर्भ में *प्राची वर्मा*	204
26.	सोशल मीडिया और पोलिटिकल कैम्पेन *डॉ. अनुपमा कुमारी*	215
27.	मीडिया : कल, आज और कल *डॉ. योगेन्द्र कुमार पाण्डेय*	220
28.	सोशल मीडिया और हमारा सामाजिक ताना–बाना *डॉ. धनंजय चोपड़ा*	229
29.	**Effects of Social Media on Organizational Culture** *Dr. Gyan Prakash Yadav*	235
30.	**Social Media in Distance Education** *Dr. Dinesh Singh*	245
31.	***Social Media as a Teaching and Learning Tool*** *Dr. Saroj Yadav*	253
32.	**Issues and Challenges of Social Media** **Dr. Prabha Shanker Mishra** *Dr. Prabha Shanker Mishra*	261

Scanned with CamScanner

मीडिया : कल, आज और कल

डॉ. योगेन्द्र कुमार पाण्डेय

मीडिया यानी वह सिस्टम जिसके द्वारा सूचनाओं का आदान–प्रदान दोतरफा होता है। सूचनाओं का यह व्यवसाय विश्वास की कसौटी पर खड़ा हुआ है। वैदिक शास्त्रों और पुराणों में वर्णित देवर्षि नारद का चरित्र इसी मीडियामैन के रूप में विख्यात है। नारद जिन्हें आदि पत्रकार कहा गया है, की विश्वसनीयता ही उनकी पूंजी थी। देवता हो या दानव दोनों समुदायों में उनकी लोकप्रियता और विश्वसनीयता बराबर थी। हर जगह उनका आदर–सत्कार होता था तथा उनकी सूचनाओं पर को पूरा तवज्जो दी जाती थी। वर्तमान मीडिया के इतिहास पर नजर डाले तो भी यही विश्वसनीयता उसका प्रमुख हथियार रहा है। परंतु पिछले कुछ समय से इस विश्वसनीयता पर दाग लगने लगे हैं। मीडिया बाजारवाद की आंधी में बहता जा रहा है। वर्तमान मीडिया में समग्र भारत के बजाये हमें एक खास वर्ग ही दिखता है। पिछले दो दशकों से इतना जरूर बदलाव देखने को मिला है कि खबरों में अपराध के बजाये अब राजनीति की खबरें अधिक जगह पाने लगी हैं। इसके पीछे का कारण मीडिया पर बाजारवाद का हावी होना और नैतिकता के बजाये मुनाफे का व्यवसाय बनना ज्यादा नजर आता है। शायद यही वजह है कि मीडिया में अब वह पैनापन नजर नहीं आता है, जिसका जिक्र कभी नेपोलियन किया करते थे। नेपोलियन ने प्रेस के बारे में कहा था 'चार विरोधी अखबारों का भय एक हजार बेयोनट के भार से भी बड़ा होता है।' ऐसा इसलिए भी सत्य प्रतीत होता था कि पत्रकारिता जनमानस का प्रतिबिम्ब और उसे प्रोत्साहित करने का माध्यम होता था। अब यही जनमानस उसकी अन्तर्वस्तु से कहीं खोता नजर आने लगा है।

पत्रकारिता आज एक नये दौर में प्रवेश कर चुकी है। परतंत्र भारत में हमारी पत्रकारिता विचारों से ओत–प्रोत थी। समाचार विचारों का प्रतिबिम्ब होते थे। आजादी के बाद जिस पत्रकारिता को जीवंत रखने के लिए विज्ञापन जैसी व्यवस्था का सृजन किया गया, उसी ने पत्रकारिता को अपना गुलाम बनाने का काम कर दिया। अब मीडिया के सशक्तीकरण के लिए विज्ञापन की जरूरत है और विज्ञापनदाता इसके लिए उससे सामग्री के स्तर पर मोलभाव करता नजर आने लगा है।

Scanned with CamScanner

मीडिया समूहों के मालिक भी अपना ध्यान पत्रकारिता के सामाजिक सरोकारों से हटाकर विज्ञापनों पर केन्द्रित करने लगे है। शायद इसी कारण संपादक नामक संस्था अब केवल कागजों में ही सशक्त रह गई हैं। हकीकत में किसी समाचार कार्यालय में विज्ञापन विभाग की चमक–दमक के आगे सभी फीके नजर आते हैं। इससे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि संपादक की भूमिका बदल गई है। अब विचारों के बजाये प्रबंधन के इशारों से विचार और समाचारों का निर्धारण किया जाता है। फिर भी इसकी प्रासंगिकता अभी भी थोड़ी–बहुत जरूर है।

जब तक मानव समाज है तब तक मीडिया की प्रसांगिकता भी है। मानव की जिज्ञासु प्रवृत्ति ही इसकी महत्वपूर्ण वजह है। मनुष्य शुरू से ही जिज्ञासु रहा है। इस कारण उसे संचार की आवश्यकता पड़ी। उसने पहले भाषा का आविष्कार किया। फिर कबूतर, दूत व हरकारे जैसे सूचना वाहकों को इसका माध्यम बनाया। मोहनजोदड़ों, हड़प्पा की खुदाई में निकले साक्ष्य इस बात की तस्दीक करते है कि सभ्यता की शुरूआत में भी मीडिया हमारे बीच किसी न क़िसी रूप में था। वहां के दीवालों पर लिखित सूचनाएं इस बात की बखूबी तस्दीक करती हैं। सम्राट अशोक के शिलालेख भी मीडिया और मानव समाज के जिज्ञासु प्रवृत्ति की ही कहानी बताते नजर आते हैं। हालांकि तब से लेकर आज के दौर में जमीन आसमान का अंतर आ चुका है। सूचना तकनीक के बढ़ते प्रभाव से मीडिया में नित नए नए परिवर्तन देखने को मिल रहे है। समय बदला है। समाज बदला है और मीडिया भी समय के साथ खुद को बदलाव की नई धुरी पर ला खड़ा किया है। बदलते समय में बदलते समाज को बदलते मीडिया की चिंता सता रही है। जाहिर है जो समाज, सत्ता, बाजार और समय के बीच की पारस्परिक नातेदारी को बखूबी निभाता आ रहा हो और आगे भी उससे ऐसा ही करते रहने की उम्मीद हो, उसको बदलता देख डर तो सतायेगा ही। डर तो इसलिए भी सता रहा है कि बदलाव के इस बयार में कभी–कभी बाजार के प्रभाव में मीडिया के स्वभाव में बदलाव दिखने लगता है। इन सबके बावूजद भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में मीडिया का स्थान अन्य व्यवसायों से जरा हटकर है। लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहे जाने का गौरव केवल मीडिया को ही प्राप्त है। मीडिया को लोकतंत्र के बाकी तीन स्तम्भों, कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के समकक्ष होने का सम्मान दिया जाता है। इसे जनतंत्र का प्रहरी माना जाता है जो शासनतंत्र के संचालन पर अपनी नजर रखता है और इसके अच्छे–बुरे कार्यकलापों को लोगों के सामने उजागर करता है। यह सरकार की नीतियों समीक्षा और उसका

Scanned with CamScanner

नीर–क्षीर विवेचन तो प्रस्तुत करता ही है, देश और समाज के विभिन्न कार्यक्षेत्रों में होने वाली गतिविधियों से भी देशवासियों को अवगत कराता है।

आधुनिक पत्रकारिता की दो सौ वर्ष से अधिक पुरानी परम्परा अब उपग्रह संचार क्रांति के कारण विशिष्ट हो गई है। मीडिया के विविध स्वरूपों ने समाचारों की विविधता का दायरा और महत्व कहीं अधिक बढ़ाने का कार्य किया है। रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट, वेब मीडिया और डिजिटल मीडिया जैसे माध्यमों द्वारा मनुष्य की जीवनशैली में लगातार हस्तक्षेप और दबाव के कारण समाचारों का अवमूल्ययन और माध्यमों की विश्वसनीयता का ग्राफ भले ही चढ़ता या उतरता दिखाई दे, लेकिन पाठकों, दर्शकों और श्रोताओं के बीच समाचारों का आकर्षण लगातार बढ़ता जा रहा है। जिस तरह संचार तकनीक सम्पूर्ण विश्व की जीवन रेखा बन चुकी है, उसी तरह समाचार भी मीडिया सहित सभी जनसंचार माध्यमों का केन्द्रीय तत्व हो गया है। इसकी रोचकता और प्रमाणिकता इसकी पहली और अंतिम कसौटी है।

1780 में जेम्स अगस्टस हिकी द्वारा प्रकाशित किए गए देश के पहले समाचार पत्र 'बंगाल गजट : कलकत्ता जनरल एडवर्टाइजर' और 1826 में प्रकाशित पहला हिन्दी समाचार पत्र 'उदण्त मार्तण्ड' का जमाना न जाने कहां पीछे छूट गया हैं। 1923 में रेडियो का आगमन हो या 1959 में टेलीविजन का, सभी का वर्तमान स्वरूप एकदम से बदला बदला सा है। इंटरनेट के आगमन ने सूचना के क्षेत्र में नई क्रांति ला दी है। अब प्रिंट के समाचार पत्रों को अब कागजों के अलावा सात समुंदर पार आप इंटरनेट पर कहीं भी देख सकते है। अब रेडियो और टेलीविजन को भी ऑनलाइन कभी भी कहीं भी सुना व देखा जा सकता है। इंटरनेट के आने से पूरा मीडिया जगत ग्लोबल हो गया है। ऐसा मानव के प्रवृत्ति की वजह से ही है। जैसे–जैसे लोगों की सूचना की भूख बढ़ी वैसे वैसे ही सूचना तकनीक में नए आविष्कारों का आगमन होता गया। लोगों में बढ़ते सूचना शक्ति के क्रेज से मीडिया की केवल भौगोलिक दूरी ही नहीं सिमटी है, वरन उसके अन्तर्वस्तु व प्रस्तुतीकरण में भी खूब परिवर्तन देखा जा सकता है।

तकनीक परिवर्तन ने मीडिया को प्रतिस्पर्धात्मक दौर में ला खड़ा किया है। यहां उसे खुद को बरकारार रखने के लिए डार्विन के सिद्धांत प्राकृतिक वरणवाद को अपनाना पड़ रहा है। इसके पीछे मीडिया के क्षेत्र में बाजारवाद की पैठ प्रमुख है। बढ़ते बाजारवाद ने मीडिया को किंकर्त्तव्यविमुढ़ सा बना दिया है। कभी शब्द को ब्रह्म की संज्ञा दी गई

Scanned with CamScanner

थी। किसी सूचना के लिए समाचार पत्र में छपे होने की दुहाई दी जाती थी, लेकिन अब परिदृश्य बदल चुका है। मीडिया में कोई भी खबर प्रकाशित हो इससे शासन सत्ता को अब ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। निश्चित रूप से मीडिया ने अपनी विश्वसनीयता खोई है। समाचार पत्रों में 'पेड न्यूज' के प्रचलन के बाद से इसे ज्यादातर लोग मीडिया में आ रहे समाचारों को गम्भीरता से लेने में परहेज करने लगे हैं। इसके अलावा कंटेंट्स में भी जनहित दूर होता जा रहा है। अब समाचारों में अपराध, क्रिकेट, कामेडी, सेलेब्रिटी, सिनेमा और सेक्स से जुड़ी खबरें की बहुतायत होती है। इन सबसे जो कुछ जगह बचती है तो वह राजनीतिक खबरों अटी पड़ी होती है।

21वीं शदी में पेड न्यूज एक अभिशाप के रूप में सम्पूर्ण मीडिया के समाने अवतरित हुआ है। अधिकतर संवाददाता और संपादक प्रायोजित अर्धसत्य और असत्य समाचारों को गढ़ने तथा प्रकाशित और प्रदर्शित करने की भरपूर कीमत वसूलने को तैयार है। लोकहित के आवरण में उन्होंने निजी हितों को प्राथमिकता दी है। हर्षद मेहता से लेकर सत्यम कम्प्यूटर्स के रामालिंगम राजू और 2007 के विधानसभा चुनावों से लेकर 2009 के लोकसभा चुनावों तक का इतिहास गवाह है कि मीडिया मालिकों ने समाचारों के प्रकाशन के लिए किन किनसे और किन किन रूपों में पैसों की वसूली की है। पेड न्यूज को लेकर मीडिया कटघरे में है। लोकसभा चुनावों में जब मीडिया के बिकने के आरोप लगे तो बात काफी दूर तक गई। शिकायत प्रेस काउंसिल तक भी पहुंची थी। मीडिया ने भी अपने दामन के छींटों को चिंता की निगाहों से देखा था। फिर भी स्थिति जस की तस है। वजह इसलिए भी है कि आज पूंजीपति ही मालिक व संपादक दोनों की भूमिका में नजर आते है। ऐसे में सुधार की गुंजाइश कम ही दिखती है।

रेडियो की कहानी कुछ अलग नजर आती है। सरकारी स्वामित्व वाले आकाशवाणी जहां अपनी पुरानी परिपाटी को छोड़ने से परहेज कर रही है, वहीं निजी क्षेत्र के एफएम रेडियो चैनल ने अपनी प्रस्तुति में जनहित को शायद ही कभी जोड़ते हैं। उनकी प्रस्तुति में ज्यादातर क्राइम, क्रिकेट, कामेडी, सेलेब्रिटी, सिनेमा और सेक्स से जुड़ी खबरों का ही तड़का भरा पड़ रहता है। आकाशवाणी के सरकारीकरण से उसमें प्रस्तुतीकरण की धार कुंद सी पड़ गई है। यही कारण है कि आज जमाना कहां से कहां पहुंच गया और आकाशवाणी का चोला वहीं का वहीं नजर आता है। वह वर्तमान जरूरतों के साथ बदलने को तैयार नहीं है। जबकि पहले रेडियों में संभावनाएं ही संभावनाएं नजर आती थी। इसका कारण इसकी पहुंच देश के 90 फीसदी लोगों तक का

Scanned with CamScanner

होना था। सरल व सुलभ भाषा में यह सूचना का सबसे सस्ता माध्यम था। शायद इसी वजह से 12 नवम्बर 1947 को दिवाली के दिन दोपहर तीन बजे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने दिल्ली के आकाशवाणी भवन में गए तब माइक को हाथ में लेते हुए उन्होंने कहा था कि 'मै इसमें शक्ति देख रहा हूं, ईश्वर की चमत्कारिक शक्ति।' दरअसल आकाशवाणी से जब दूरदर्शन को अलग किया गया तो इसके हुक्मरानों द्वारा इसे उपेक्षित कर दिया गया। आज के समय में आकाशवाणी के पास कोई नया विजन देखने को नहीं मिलता है। जबकि निजी एफएम चैनलों को जनहित से कोई सरोकार ही नजर नहीं आता है। उन्हें तो सिर्फ मनोरंजन करना है उसके लिए किसी स्तर को बरकरार रखने की उन्हें शायद ही जरूरत रहती है। सामुदायिक रेडियो की गुणवत्ता व पहुंच कम होने के कारण वे आज के दौर में प्रासंगिक होते हुए भी रेस से बाहर नजर आते हैं।

टेलीविजन ने तो मीडिया का स्वरूप ही बिगाड़ के रख दिया है। जब आकाशवाणी से अलग कर इसे भारत में विस्तारित किया जा रहा था। अशोक कुमार चंदा समिति की सिफारिशों के मद्देनजर इसकी खूबियो को देखा जा रहा था तो मीडिया के अधिकांश सुधीजनों को यह लगने लगा था कि अब समाचार पत्रों व रेडियो के दिन लदने वाले हैं। यह श्रव्य के साथ दृश्य भी होने के फायदे के कारण काफी सशक्त माध्यम बनने की संभावना को जन्म दिया था। लेकिन यहां भी सरकारीकरण का ही भूत हावी रहा। इसके समाचारों में हमेशा अविश्वास की नजरों से देखा जाने लगा। इसके समाचारों में कुछ नयापन भी नहीं देखने को मिलता। दूरदर्शन के समाचार चैनल डीडी न्यूज का हाल यह है कि 90 के दशक में जो स्टार न्यूज व जी न्यूज के हिन्दी–अंग्रेजी के क्रमशः बुलेटिन के प्रयोग हुआ करते थे वे आज उसके कार्यक्रम निर्धारण के तरीके हैं। जबकि तब यह भ्रांति थी कि भारत के लोग हिन्दी–अंग्रेजी को बराबर का तवज्जो दिया करते हैं। हालांकि यह भांति तब निर्मूल शाबित हुई जब डीडी मैट्रों, जो अब बंद हो चुका है से अलग होकर 'आज तक' ने 24×7 हिन्दी न्यूज चैनल का प्रसारण शुरू किया और पहले ही वर्ष में देश का नम्बर एक न्यूज चैनल का दर्जा प्राप्त किया था। आज तक की इस सफलता के बाद स्टार व जी तथा नये खुलने वाले समाचार चैनलों ने भी अपनी नीतियों में बदलाव लाने का कार्य किया और वे दर्शकों के मिजाज को भांपते हुए हिन्दी समाचारों को ज्यादा तरजीह देने लगे। लेकिन डीडी न्यूज अभी उसी पुराने दौर में जी रहा है। विगत डेढ़ दशक में निजी चैनलों की बाढ़ सी आ गई है। इन चैनलों में समाचारों की दिशा बाजार तय करने

Scanned with CamScanner

लगा है। यहां समाज की संवेदनाएं एवं भावनाएं बाजारवाद की चुनौती के आगे एक निष्प्रयोज्य विषय वस्तु ही बनकर रह गई है। इन चैनलों में कुरूक्षेत्र के एक गांव के नन्हे बच्चे प्रिंस के गड्ढे में गिरने का 52 घंटों तक लगातार प्रसारण की घटना हो या वाराणसी में अपने हक के लिए खुद को जलाकर आत्महत्या करने वाली घटना का सीधा प्रसारण। सभी जगह संवेदनाएं लुप्त सी हो गई हैं। इन चैनलों को अगर कुछ चाहिए तो वह सनसनी पैदा करने वाली कोई मसालेदार खबर होनी चाहिए। टेलीविजन की इसी चरित्र ने समाचार पत्रों को और मजबूत करने का कार्य किया, जिनके बारे दो दशक पूर्व यह कहा जाने लगा था कि अब उनके दिन चुक जाएंगे।

आज के युवा मुख्यतः इंटरनेट से जुड़े है। जिस क्षण घटना होती है, उसकी जानकारी उन्हें हो जाती है। अधिकांश युवा कम्प्यूटर के अलावा मोबाइल के जरिए भी नेट से जुड़े रहते है। दरअसल यह माध्यम सूचना के सभी क्षेत्रों में संचरण करते है। गति और काल के छोरों में समन्वय बिठाते है। युवाओं की सूचना पाने की भूख ने इस विधा को और अधिक आकर्षित करने का कार्य किया है। इसका आकर्षण ही है कि अब सामाचार पत्रों ने प्रिंट संस्करण के साथ इंटरनेट संस्करण भी खोल रखे हैं। ताजातरीन जानकारियों से लैस ये ई–पेपर समाचार पत्रों को आनलाइन कहीं भी कभी भी देख व पढ़ सकते है। रेडियो और टीवी न्यूज चैनलों का भी प्रसारण इंटरनेट पर सहज उपलब्ध है। इंटरनेट से एक खास बात जो सामने आयी वह यह कि इसने सही मायने में सिटीजन जर्नलिस्ट की परिकल्पना को साकार करने का कार्य किया है। सोशल नेटवर्किंग साइटों ट्वीटर, फेसबुक, यू–ट्यूब और ब्लाग आदि ने लोगों को अभिव्यक्ति के लिए एक नया प्लेटफार्म उपलब्ध कराने का कार्य किया है। हालांकि इस प्लेटफार्म पर स्वतंत्रता स्वछंदता में तब्दील होती दिख रही है। लोगों के अश्लील व मानहानिजनित चित्रों व टिप्पड़ियों से इस विधा को आघात लगा है। इन पर निगरानी के लिए बने सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम–2000 निष्प्रभावी साबित हो रहा है। ऐसे में तमाम संभावनाओं के बावजूद इस विधा में गंभीरता का अभाव बढ़ गया है।

संक्षेप में कहे तो आज का मीडिया सनसनीखेज खबरों में ज्यादा विश्वास करने लगा है। उसमें उत्तरदायित्व की भावना का ह्रास दिन प्रतिदिन देखने को मिल रहा है। नीरा राडिया टेपकाण्ड में कई पत्रकारों की संलिप्तता इस बात की तस्दीक करती दिखाई पड़ती है। प्रेस परिषद भी इस मामले में चुप है। किसी मुद्दे को उठाने, उछालने और उत्तेजक बनाने में वह अपनी नैतिक और समाजिक जिम्मेदारी भूल

Scanned with CamScanner

जाता है। उसे अधिक जिम्मेदार होना चाहिए। पत्रकारिता के इतिहास को देखे तो समाचारपत्रों ने आजादी की जंग में अपना वह योगदान दिया जो अद्वितीय था। वह दौर भारतीय पत्रकारिता और पत्रकारों के लिए आदर्श था। दरअसल चाहिये यह कि अखबारों में समाचारों का चयन और प्रस्तुति इस उद्देश्य के साथ हो जिससे कि वह समाज के नैतिक परंपराओं, संस्कारों और विश्वासों को शक्ति प्रदान करे। अगर विचार करें तो साहित्य और पत्रकारिता में एक खास मूल अंतर प्रतीत होता है। साहित्य संस्कृति, विज्ञान, कला और ज्ञान की अन्य विधाओं पर केन्द्रित होती है, जबकि समाचार अपनी विविधता, मौलिकता, गुणवत्ता और विश्वसनीयता के कारण पाठकों के बीच प्रतिष्ठा और लोकप्रियता प्राप्त करता है। समाचार और संवाददाता के बीच का पुराना रिश्ता आज भी अटूट है। संवाददाता ही समाचार का अन्वेषक और प्रस्तुतकर्ता होता है। इसलिए संवाददाता को ही पहले बाजारवाद से मोह भंग कराने की जरूरत है। ऐसा समाचार पत्र मालिकों व पत्रकारों के बीच बेहतर समन्वय से ही संभव हो सकता है।

अब बाजारवाद के दुर्गुणों के ओत–प्रोत मीडिया के लिए समाचारों की विश्वसनीयता के परीक्षण से कही अधिक महत्वपूर्ण है उसे सबसे पहले प्राप्त कर लेने की होड़। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आने के बाद पत्रकारों पर खबरों को सनसनीखेज बनाने के अलावा खबरों को प्रायोजित और उत्पादित भी करने का दबाव सीधे दिखने लगा है। मिशन से प्रोफेशन में तब्दील मीडिया का यह बड़ा वीभत्स स्वरूप है कि पत्रकारों को अब जनहित के बजाये सनसनीखेज और बिकाऊ खबरों की तलाश रहती है।

बदलते परिवेश और भूमण्डलीकरण के कारण जिस तेजी से पत्रकारिता जगत में परिवर्तन दिखाई दे रहे है, उससे एक प्रकार की चिंता अवश्य पैदा हो रही है। अपने पाठक या टीआरपी को बढ़ाने के लिए जिस तरह खबरों को सनसनी देकर लोगों तक परोसा जा रहा है, उससे तो यही लगता है कि पत्रकारिता अपने बुनियादी उसूल जन जागरण, जन चेतना और दिशा को भूल चूकी है। आज के दौर में नए प्रतिमान खड़ा करने और दूसरों से आगें रहने की व्यावसायिक विवशता के चलते मीडिया खलनायको में भी हिरोइज्म देखने लगा है। जिस तरह से पिछले एक दशक में आपराधिक पृष्ठभूमि से संबंधित लोग (दाउद, वीरप्पन, फूलन देवी, ददुआ, अबू सलेम, छोटा राजन, अरूण गवली, अश्विन नाईक, बब्लू श्रीवास्तव आदि) फ्रंट पेज की कवरेज पा रहे हैं, उससे आज की युवा पीढ़ी में गलत संदेश जा रहा है। जिस तरह से

Scanned with CamScanner

भ्रष्ट राजनीतिज्ञों को कवरेज दिया जा रहा है, उससे भी समाज में गलत संदेश जा रहा है।

आलम यह है कि आज का युवा भले ही महात्मा गांधी, पण्डित नेहरू, सरदार भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, मौलाना अबुल कलाम आजाद और खान अब्दुल गफ्फार उर्फ सरहदी गांधी को न जानता हो, लेकिन माफियाओं, फिल्मी हीरों और घोटालेबाजों के नाम उसकी जुबां पर होती है। नई पीढ़ी को लोकनायक जयप्रकाश नारायण और डा. राम मनोहर लोहिया जैसे रीयल हीरो के बारे भले ही न पता हो, लेकिन वह अमिताभ बच्चन के जन्मदिवस को याद रखना अपना कर्तव्य समझती है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जहां ग्लैमर परोसने में व्यस्त है तो प्रिंट मीडिया अब पेज–थ्री को चलन में लाकर बाजारवाद की चकाचौंध में अपने को कमजोर नहीं साबित करना चाह रहा है। मीडिया एक सेतु की तरह है जो नागरिको को समाज, देश और विश्व से जोड़ता है, अतः इसमें आने वाली गिरावट चिंतनीय है।

इस तरह चाहे प्रिंट हो या इलेक्ट्रॉनिक या फिर वेब मीडिया सभी पर बाजारवाद का प्रभाव साफ परिलक्षित हो रहा है। इन पर निगरानी संस्थाएं या तो निष्क्रिय है या निष्प्रयोज्य साबित हो रही है। प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दोनों को अपने चाल, चरित्र और चेहरे में परिवर्तन करने की जरूरत है। उनके लिए यदि बाजारवाद मजबूरी है तो जन सरोकार से जुड़ना उनकी आवश्यकता। इस कारण जनमाध्यमों को जनता से जुड़ाव जरूरी है। यदि वह इससे ऐसे ही विमुख होती रही तो एक दिन उसके आस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह खड़ा हो जाएगा। रही बात वेब मीडिया की तो उसके लिए इंटरपोल पुलिस की तरह इंटरनेशनल इंटरनेट ऐक्ट के प्रचालन की जरूरत है ताकि इंटरनेट से हो रहे मानहानिकारक गतिविधियों पर लगाम लगाई जा सके। प्रेस परिषद को केवल दिखाउ दांत बनाने के बजाय सुधारात्मक कार्यक्रम चलाने व सजा के अधिकार से भी लैस किए जाने की आवश्यकता है। इन सबसे ऊपर जो सबसे खास बात है वह ये कि मीडिया की धुरी समझे जाने वाले पत्रकारों के उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था भी अति आवश्यक है।

Scanned with CamScanner